JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिंदी आलोचना का प्रारंभिक दौर

रोहित सिंह
शोधार्थी
अलीगढ़ मुस्लिम विश्विद्यालय, अलीगढ़

सारांश

हिंदी आलोचना का प्रारंभिक दौर नामक इस लेख में आलोचना की शुरुआत कैसे होती है आलोचना का विकास और किसी रचना को समझने के लिए आलोचना क्यों जरुरी होता है तथा भारतेन्दु युग की आलोचक के बारे में भी इस लेख में बताया गया है आलोचना के प्रारंभिक दौर में संयोगिता स्वयंवर, बंग विजेता, नीलदेवी, नाटक और हरमिट आदि की समीक्षा से आलोचना की शुरुआत हुई।

प्रमुख शब्द – ऐतिहासिक, परिचयात्मक आलोचना, नाटक, पश्चिमी साहित्य, नाटयशास्त्र।

प्रस्तावना

हिंदी में प्रारंभिक दौर की आलोचना संस्कृत आलोचना पर आश्रित थी जब खड़ी बोली का उदय और विकास हुआ तो लोग पश्चिमी साहित्य से प्रभावित होने लगे। अधिकतर हिंदी के गद्य विधाओं के साथ ऐसा हुआ और हिंदी आलोचना के उदय में भी इनकी भूमिका रही थी। साहित्य और आलोचना पर पश्चिमी साहित्य का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी ने हिंदी आलोचना का उदय वैचारिकता की आग्रह को स्वीकार करते हैं आलोचना उन विधाओं में से है जो पश्चिमी साहित्य की नकल पर नहीं बल्कि साहित्य को समझने बुझने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यकता के कारण जन्मी और विकसित हुई हैं।[1]

हिंदी आलोचना का प्रारंभ रीतिकाल के कुछ समय पहले शुरु होता है लेकिन उसका वास्तविक शुरुआत भारतेंदु से मानी जाती है गद्य की अन्य विधाओं की तरह आलोचना का आरंभ आधुनिक युग से

हुआ है। भारतेंदु युग से पूर्व हिंदी साहित्य के मध्यकाल में आलोचना के क्षेत्र में गुण और दोष को बताने के रुप में प्रयास किया गया है रीतिकाल में संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाकर रस, अलंकार, नायिका–भेद और छन्दशास्त्र का सैद्वांतिक विश्लेषण किया गया था, किंतु इस प्रयास को आलोचना नहीं कह सकते। ''जनसमूह के ह्रदय की भावनाओं का आग्रह करके ही हिंदी की आलोचना रीतिकालीन केंचुल उतारकार आधुनिक बनी''[2] और आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी आलोचना के प्रारंभिक दौर को गुण–दोष विवेचन के रुप में ही देखते हैं ''कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे हिंदी साहित्य में समालोचना पहले पहल केवल गुण दोष दर्शन के रुप में प्रकट हुई''[3]।

भारतेंदू युग में आलोचना पत्रिकाओं के माध्यम से ही विकसित हुई थी। हरिचंद्र मैगजीन, हिंदी प्रदीप, आनंद कादम्बिनी, भारत मित्र और ब्राह्मण आदि पत्रिकाओं में विविध विषयों पर कई लेख और निबंधों से आलोचना दृष्टि का विकास हुआ। भारतेन्दु युग में जहां एक तरफ पत्रिकाओं में राष्ट्रीय और समाज हित को नजर में रखकर पुस्तकों की आलोचना की जा रही थी। इस युग की पत्रिकाओं में छपी पुस्तकीय परिचयात्मक आलनोचनाओं में से ही आधुनिक आलोचना का स्वरुप दिखाई पड़ने लगता है 'आनंद कादम्बिनी' पत्रिका की 'संयोगिता स्वयंवर' और 'बंग विजेता' तथा 'हिंदी प्रदीप' पत्र की 'सच्ची समालोचना' में इन सबका आलोचना के प्रारंभिक दौर के विकास में योगदान दिए हैं।

भारतेन्दु युग में विविध गद्य विधाओं की शुरुआत हुआ था आलोचना की विधिवत शुरुआत भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने ही की थी भारतेंदु ने नाटक पर विचार देते हुए नाटय शास्त्र संबंधी 'नाटक' (1883 ई0) की रचना करके आधुनिक हिंदी आलोचना की शुरुआत की। इस लेख में 60 पृष्ठों तक नाटकों के शास्त्रीय विवेचन और उसके इतिहास के बारे में बताया गया है यह संस्कृत नाटयशास्त्र के अनुसार लिखा गया है किंतु इसकी बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन नाटयशास्त्र की सामान्य जानकारी दी गई है साथ ही नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य पर भी बल दिया है उनके अनुसार ''नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य होते हैं तथा 1–श्रृंगार, 2–हास्य, 3–कौतुक, 4–समाज–संस्कार, 5–देश वत्सलता। श्रृंगार और हास्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं जग में प्रसिद्व है समाज–संस्कार नाटकों में देश की कुरीतियों को दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है, यथा शिक्षा की उन्नति, विवाह संबंधी कुरीति निवारण, उथवा धर्म संबंधी अन्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथा भाग का इस बृद्वि के संगठन कि

देश की उससे कुछ उन्नति हो, इसी प्रकार के अंतर्गत है देश वत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़नेवालों या देखनेवालों के हृदय में स्वदेश अनुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुण और वीर रस के होते हैं''[4]

भारतेंदु ने अपने 'नाटक' में नाटक संबंधित विचार एक नाटककर की तरह से दिखाए हैं, एक आलोचक की तरह से नहीं। वे लेख एक सर्जक की तरह से रचना पर बल देते हुए यह बताते हैं कि नाटककार को किन बातों पर ध्यान देना चाहिए। काव्य में को भी हम पढ़ते हैं या सुनते हैं उसे दृश्य काव्य हमें स्पष्ट रुप से दिखाता है और अधिक आनंद प्राप्त होता है इस पर अपना विचार देते हुए लिखते हैं ''यदि श्रव्य काव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रंथ में पढ़िए तो काव्य जनित आनंद होगा, यदि कोई प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उससे चतुर्गणित आनंद होता है''[5]।

किसी भी विधा की अपने समय के समाज तथा साहित्य से कुछ साहित्यिक अपेक्षाएं होती हैं वहीं आलोचना की भी थी भक्तिकाल और रीतिकाल से जो इनके स्वरुप आधुनिक युग की रचनाओं के लिए पर्याप्त नहीं थे जिसके कारण आलोचना का विकास स्वाभाविक था।

भारतेंदु काल में पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन में संपादकीय टिप्पणियों और यदा कदा संपादक के नाम पत्रों के रुप में आलोचना का स्वरुप दिखाई देने लगता है लेकिन यह धीरे धीरे स्वरुप बदलता हुआ अपने आप का परिष्कार करता है। भारतेंदु युग में सबसे पहले पुस्तक परिचय शैली के रुप में आलोचना का सूत्रपात बदरीनारायण चौधरी ने आनंद कादम्बिनी में तथा लाला श्रीनिवासदास कृत संयोगिता स्वयंवर की विस्तृत आलोचना प्रकाशित की थी ''लाला श्रीनिवासदास के संयोगिता स्वयंवर नाटक की बड़ी विशद और कड़ी आलोचना, जिसमें दोषों का उद्घाटन बड़ी बारीकी से किया गया था''[6]।

बालकृष्ण भट्ट ने सच्ची समालोचना नाम से संयोगिता स्वयंवर की आलोचना हिंदी प्रदीप पत्रिका में की थी। इन्होंने इसकी आलोचना ऐतिहासिक आख्यानों के अनुप्रयोग, पात्रों के चयन और रचना की जीवंतता इत्यादि बातों के आधार पर इसकी आलोचना की है विश्वनाथ त्रिपाठी ने इनके बारे में लिखा है कि ये संयोगिता स्वयंवर की आलोचना करते समय इस बात पर बल दिया है कि ''किसी समय लोगों के हृदय की क्या दशा थी और कैसा समय था इनका पता लगाएं बग़ैर ऐतिहासिक कथानकों का उपयोग साहित्य रचना में नहीं किया जा सकता है''[7] बालकृष्ण भट्ट ने नीलदेवी, परीक्षा गुरु, हरमिट और एकांतवासी योगी की भी आलोचनाएं की हैं यह सभी भारतेंदु युग में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं इसमें कोई

संदेह नहीं है कि भारतेंदु युग में आधुनिक हिंदी आलोचना का सूत्रपात तो हो गया था किंतु इस युग के आलोचकों को सूक्ष्य काव्य सौंदर्य तत्व को पहचानने की क्षमता नहीं थी।

बालकृष्ण भट्ट ने श्रीधर पाठक के द्वारा अनुदित गोल्डस्मिथ की रचना 'हरमिट' की समालोचना 'हिंदी प्रदीप' में किया था जिसे भट्ट जी ने भिन्न रुप से दिखाते हुए उनकी प्रशंसा की है हिंदी क्षेत्र के लिए अंग्रेजी काम की भाषा हो सकती है, इसमें कोई संदेह नहीं है, किंतु हमारी हिंदी भाषा की अभिव्यक्ति हिंदी भाषा में ही हो सकती है श्रीधर पाठक ने हरमिट का अनुवाद करके लोगों को यह बताने का प्रयास किया है कि कविता में पश्चिमी साहित्य के तत्व हमारे लिए मनोरंजन और रुचि पैदा नहीं कर सकते हैं। अंग्रेजी भाषा अत्यंत समृद्वि और उन्नति के राह पर है लेकिन कविता के रुप में हमारी जान भाषाओं से कभी भी आगे नहीं जासकती है ''हरमिट का मूल रुप हमें उतना अच्छा लगे किन्तु अंग्रजों को उसी प्रकार प्रिय होगा जैसे हमें उसका अनुवाद या अपनी भाषा की कोई अन्य अच्छी कृति।''[8] आगे चलकर आलोचना का स्वरुप अधिकाधिक स्पष्ट हुआ है।

भारतेंदु युग में पुस्तक परिचयात्मक आलोचना शैली का आरंभ जिस तरह से बालकृष्ण भट्ट और प्रेमधन जी ने शुरु किया था आगे चलकर उसका विकास सरस्वती पत्रिका में खूब हुआ जिसमें आलोचना का आदर्श स्थिर हुआ। परिचयात्मक आलोचनाएं रचना के सामान्य परिचय उसकी निंदा और प्रशंसा उस विषय पर स्वतंत्र लेख, रचनाओं को किसी ऐतिहासिक संदर्भ में देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई। द्विवेदी जी ने एक आलोचक का कर्तव्य निर्धारण करते हुए कहा था 'किसी पुस्तक या प्रबंध में क्या लिखा गया है। वह विषय उपयोगी है या नहीं उससे किसी का मनोरंजन हो सकता है या नहीं उससे किसी को लाभ पहुंच सकता है या नहीं, लेखक ने कोई नयी बात लिखी है या नहीं, यह विचारणीय विषय है समालोचक को प्रधानतः इन्हीं बातों पर विचार करना चाहिए।'[9]

भारतेंदु ने वस्तुतः नाटक पर एक निबंध लिखकर जिस तरह से हिंदी आलोचना का सूत्रपात किया था उसे आगे बढ़ाने का कार्य बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन और भट्ट ने किया। ये लोग संपूर्ण जीवन को नज़र रखते हुए आलोचना लिखी है इन्होंने अनेक विषयों पर लेख लिखे हैं यह विभिन्न आंदोलनों में शामिल भी होते थे और उस पर अपनी राय भी रखते थे पात्रिकाएं इनके विचारों को जानने का एक

जरिया हुआ करती थी। इस युग की आलोचना पत्रकारिता से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं इन्हीं से आलोचना का निरंतर विकास होता है और आगे चलकर अपना स्वरुप अधिक स्पष्ट करती हैं।

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि भारतेंदु युग अपने रचनात्मक स्वरुप की दृष्टि में महत्वपूर्ण है भारतेंदु युग में जो भी छिटपुट गद्य लिखी गई वह अपने युग की प्राय सभी आलोचनात्मक प्रवृत्ति को समेटकर चलती है भारतेंदु युग हिंदी आलोचना किसी सफलता से अधिक संभावनाओं की नज़र से महत्वपूर्ण है। इस युग की आलोचना राष्ट्रीय नवजागरण की सक्रियता के फलस्वरुप विकसित हो रही थी भारतेंदु युगीन आलोचना शैली में व्यंग्य और स्पष्टता साफ दिखाई देती है जो इस युग की सामान्य पहचान है।

---

1. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.स. 17
2. वही
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, आ रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 340
4. भारतेंदु नाटकावाली, द्वितीय संस्करण, सं. ब्रजरत्नदास, पृ.सं. 372
5. भारतेंदु नाटकावाली, द्वितीय संस्करण, सं. ब्रजरत्नदास, पृ.सं. 365
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, आ रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 340
7 हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.स. 21
8. वही, पृ.सं. 22
9. कवि कर्तव्य, रसज्ञ रंजन, महावीर प्रसाद द्विवेदी